तीनों के उल्लेख में आगम भरे पड़े हैं । वीरायतन के शांत परिसर में ब्राह्मी कला मन्दिर है । एक वार तो हम इन पैनलों को देखकर जैन श्राविकों, राजाओं और तीर्थंकरों के जीवन से परिचय होते हैं । इनके माध्यम से हम इतिहास की गलियों में मस्त होकर घूम सकते हैं ।

यह कला मन्दिर प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की सुपुत्री ब्राह्मी सुन्दरी को समर्पित है । यह ब्राह्मी साध्वी जिसने प्रभु ऋषभदेव से ब्राह्मी लिपि सीखी थी । उसे प्रभु ऋषभ की प्रथम साध्वी वनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । उनकी एक वहिन सुन्दरी थी जो गणित की जन्मदाता थी । दोनों वहिनों ने अपने पिता ऋषभदेव से साध्वी जीवन ग्रहण किया था । इन साध्वियों ने वाहुवली प्रतिवोध दिया था । ऐसी साध्वी को समर्पित यह ब्राह्मी कला मन्दिर, जैन कला व इतिहास का संजीव चित्रण है । खाना खाकर कुछ विश्राम किया । यह स्थल पर मन खूव लगता है । थकान का नाम नहीं रहता । एक वात और उल्लेखनीय है कि विहार के पशु दूध के मामले में कमजोर है । विहार में गरीवी वहुत है । साधारण विहारी खाली रहता है । गले में ट्रांजिस्टर, हाथ में छतरी लिये विहारी हर स्थान पर घूमते है। स्त्रियां खूव काम करती है । हम राजगिर के वाजार में घूमने निकले रास्ते में हमें स्थान-स्थान पर वौद्ध भिक्षुओं से भेंट होती रही । हमें एक वौद्ध भिक्षुणी श्रीलंका की मिली । जिससे मेरे भ्राता रवीन्द्र जैन ने धर्म चर्चा की ।

राजगिर में अजातशत्रु का दुर्ग भी है । यहां ब्रह्मा, जापानी वौद्धों के मन्दिर दर्शनीय हैं, जापान के वौद्धों ने रत्नगिरि पहाड़ की चोटी पर शांति स्तूप की स्थापना की है । हम इन सव स्थानों को देखना चाहते थे पर समयाभाव के कारण उन्हीं स्थानों को देखा जो वीरायतन के करीव

पड़ते थे । दोपहर के २.३५ के करीब हमने इस पहाड़ पर चढ़ने की योजना वनाई क्योंकि समारोह ३ बजे के बाद था ।

विपुलाचल पर्वत :

यह पहाड़ दिगाम्वर परम्परा में बहुत महानता रखता है । दिगम्वर परम्परा यह मानती है कि प्रभु महावीर ने अपना प्रथम उपदेश यहीं दिया था । इस पर्वत की ५५५ सीढ़ियां हैं, सीधी चढ़ाई है । आधे रास्ते में एक प्राचीन चरणपादुका मन्दिर है । कुछ दूर चढ़ाई पर पहाड़ के ऊपर की तलहटी आती है । यहां भी एक चाय की दुकान मिली, पांव जवाव दे चुके थे, फिर भी प्रभु ममत्व के कारण आगे वढ़ रहे थे। इस पर्वत पर मुनि सुव्रत स्वामी का मन्दिर व अन्य जिनालय हैं । इनमें प्रभु महावीर, चन्दाप्रभु तथा ऋषभदेव की चरण पादुकाएं उललेखनीय हैं । यह पर्वत पर विराजित चरण बहुत प्राचीन हैं । प्रतिमाएं किसी मन्दिर से लाकर स्थापित की गई हैं ।

यहां सबसे उल्लेखनीय मन्दिर समोसरण मन्दिर है । जो दिगम्वर जैन समाज ने शांति स्तूप की तरह वनाया है । इस मन्दिर का निर्माण भगवान महावीर से २५००वें निर्वाण महोत्सव पर हुआ था । मन्दिर के अन्दर कोई प्रतिमा नहीं । मन्दिर का आकार समोसरण का है । समोसरण में प्रभु का मुख चारों ओर दिखाई देता है। यहां की प्रतिमाएं शांति स्तूप की भांति सुनहरी हैं । पर्वत से नीचे उतरे । तीन वजे हमारा वीरायतन में प्रोग्राम था । वीरायतन में ठहरे समस्त यात्री उस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए ।

श्रावक शिरोमणि पद अलंकरण

वीरायतन में रोजाना समारोह होते रहते हैं । यहां

देश-विदेश के श्रद्धालु आते हैं, सेवा साधना करते हैं, कवि जी का प्रवचन सुनते हैं । ज्यादा राजगिरि ठहरने वाले यात्रियों के लिये वीरायतन ठहरना सरल है । यात्रा सुगम हो जाती है । समारोह के लिये योग्य भीड़ जुट रही थी । हमें पता नहीं था कि यह समारोह क्यों हो रहा है । कविजी महाराज के आश्रम में यह सम्मेलन हो रहा था ।

श्री फिरोदीया जी की प्रधानगी में यह समारोह शुरु हुआ । श्री फिरोदीया वीरायतन के प्रधान थे । वह लूना ग्रुप स्कूटर के मालिक थे । सभी पारिवारिक बंधनों को त्याग कविश्री की सेवा में रह रहे थे । उनके कारण वीरायतन ने अच्छी तरक्की की है । इस समारोह का प्रारम्भ कविश्री के मंगलाचरण से हुआ । फिर एक कवि ने उपाध्याय श्री अमरमुनि जी महाराज की सेवा में एक कविता प्रस्तुत की । फिर मेरे धर्मभ्राता रवीन्द्र जैन ने उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० की सेवा में एक अभिनन्दन पत्र प्रस्तुत किया । उन्हें "जैन धर्म दिवाकर" पद से हमारी संस्था ने अलंकृत किया । अभिनन्दन पत्र रात्रि को तैयार किया गया । २५वीं महावीर निर्वाण शताब्दी संयोजिका समिति पंजाब की ओर से अभिनन्दन पत्र के साथ शाल अर्पण किया गया, साथ में पंजाबी जैन साहित्य भेंट किया गया ।

इस अलंकरण के उत्तर में उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म०, ने फुरमाया कि रवीन्द्र व पुरुषोतन दोनों का जीवन जैन धर्म को समर्पित आस्थापूर्ण जीवन है, यह दोनों एक दूसरे के प्रतीक हैं । एक-दूसरे के विचारों से समर्पित हैं । इन्होंने एक भिक्षु का सम्मान किया । इस सम्मान से मुझे संघ की सेवा करने का बल मिला है । मैं इन दोनों धर्मभ्राताओं द्वारा की जिन शासन के प्रति सेवाओं का अनुमोदन करता हूं । इन्होंने पंजाबी भाषा में सबसे पहले शास्त्रों का अनुवाद

किया । १९७२ से इन्होंने मेरे आगरा में दर्शन किये थे । इतने अंतराल के वाद अब इन्होंने काफी विकास किया है । इनकी गुरुणी प्रेरिका उपप्रवर्तिनी साध्वी स्वर्णकान्ता जी म० को मैं मुवारकवाद देता हूं, इन्हें आशीर्वाद देता हूं, मैं अपनी ओर से भाई पुरुषोतम जैन को श्रावक शिरोमणि पद से विभूषित करता हूं । यह सम्मान उन्हें पंजावी जैन साहित्य के प्रति सेवाओं के लिये है ।

उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० ने मुझे अलंकरण का प्रतीक शाल ओढ़ाया । यह समारोह सादा व पारिवारिक था । कविजी के वहुत थोड़े से इशारे पर यह प्रोग्राम हुआ । उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट अतिथियों को पंजावी साहित्य भेंट किया गया, पर इस समारोह में कोई पंजावी न था । पर इन लोगों के मन में पंजावी भाषा में प्रकाशित जैन साहित्य को देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई । इनके एक अधिकारी ने सुझाव रखा क्यों न गुरुदेव उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० के सारे साहित्य का पंजावी अनुवाद किया जाए, इसके लिये दोनों विद्वानों की सहायता ली जाये ।

इसके उत्तर में मैंने कहा कि हमें गुरुदेव के साहित्य का पंजावी अनुवाद करने का कोई इतराज नहीं, हमारे लिये यह गौरव का विषय है कि हम भगवान महावीर की भूमि पर, प्रभु महावीर के एक भिक्षु की रचना का पंजावी अनुवाद करेंगे। यह तो हमारा सौभाग्य होगा, पर इसके प्रकाशन की व्यवस्था वीरायतन को करनी होगी । हम कोई परिश्रमक नहीं लेंगे । आप कोई भी पुस्तक वताएं, जिसका पंजावी अनुवाद जनसाधारण के लिये उपयोगी हो ।''

हमें इस समारोह कई लाभ हुए । एक तो तीर्थदर्शन, दूसरा सौ पुस्तकों के लेखक उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म०

के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इसी इतिहासिक भूमि पर मेरा सम्मान हुआ । मैं अपने को इस योग्य नहीं समझता क्योंकि मेरे धर्मभ्राता के श्री रवीन्द्र जैन के विना यह सम्मान अधूरा है । पर सभी लोग हम दोनों में कोई अन्तर नहीं समझते । मुझे वड़ा व गुरु मानकर सम्मानित करते हैं । इससे हम दोनों को कोई अन्तर नहीं पड़ता । इस वहाने समाज हमारे धार्मिक काम का मूल्यांकन करता है । इन सम्मानों यही लाभ है ।

वीरायतन के प्रांगण में एक दिन और रुके । इसका प्रमुख कारण राजगिर में वाकी वचे ३ पहाड़ों की यात्रा थी । शाम को प्रतिक्रमण के वाद उपाध्याय श्री अमरमुनि जी से साक्षात्कार करने का अवसर मिला, वहुत ही मधुर मिलन था । इनसे हमारी अंतिम भेंट थी । इतनी वृद्धावस्था में भी उनकी प्रवचन शैली कमाल की थी । वह कवि भी थे, वह पहले मुनि थे, जिन्होंने जैनधर्म के प्रचार के लिये वाहन प्रयोग का समर्थन किया । जैन समाज में वाहनधारी मुनि श्री सुशील कुमार जी म० व सन्मति संघ आचार्य मुनि श्री विमल कुमार जी म० को सन्मति संघ का आचार्य पद प्रदान किया । जैन समाज में साध्वी को आचार्य पद देने की प्रथा नहीं थी । इस महान क्रांतिकारी चिन्तक ने साध्वी चन्दना को आचार्य पद देकर स्त्री जाति को सम्मानित किया । उपाध्याय श्री का कथन है "जव स्त्री तीर्थंकर पद की लोगों को प्रतिवोध दे सकती है, तो आचार्य पद ग्रहण क्यों नहीं करा सकती । यह सव भगवान महावीर के वाद हुए आचार्यों की व्यवस्था है, भगवान तीर्थंकर परम्परा में स्त्री पुरुष में कोई अंतर नहीं रखा है, स्त्री मोक्ष प्राप्त कर सकती है तो आचार्य-उपाध्याय क्यों नहीं ?" इस रात्रि को कुछ थकावट नहीं हुई। हम सोये, फिर स्वभाव के कारण शीघ्र उठे । फिर

अगले दिन पर्वत की तैयारी करने लगे । यह पर्वत था रत्नगिरि ।

रत्नगिरि :

इस पर्वत पर जाने का मार्ग खतरनाक है । लोग समूहों में गुजरते हैं । उतरने का मार्ग अलग है । इस मार्ग पर चलने के लिये १२७७ सीढ़ियों से गुजरना पड़ता है । इस पर्वत पर तीर्थंकर चन्द्रप्रभु जी व भगवान शांतिनाथ की सुन्दर प्रतिमाएं मन्दिरों में विराजमान हैं । पर्वतों की हरियाली मन से मोह लेती है । इस पर्वत पर भगवान नेमिनाथ, भगवान शांतिनाथ, भगवान पार्श्वनाथ और अभिनंदन स्वामी के चरण चिन्ह हैं । यह पवित्र चरण पादुकाएं व प्रतिमाएं भक्तजनों की थकावट को दूर करती है । ऐसे लगता है कि हम निर्मित किसी देवभूमि का विहार कर रहे हों । इस पर्वत पर जापान सरकार द्वारा शांति स्तूप स्थापित है । जिस पर रोप-वे द्वारा जाया जाता है । जिस समय हम वापिस नीचे उतरे तो रास्ते में अनेकों बौद्ध स्मारकों के चिन्ह देखने को मिले । इस शांति स्तूप से हम रोप-वे के रास्ते से गये । यहां जूते नीचे ही उतारने पड़ते हैं । यहां जापान की सरकार ने एक जरनेटर भेंट किया है । रोप-वे भी जापान सरकार की भेंट हैं । इस शांति स्तूप को संसार भर से दर्शनार्थी देखने को आते हैं । शांति स्तूप की प्रतिमाएं भी जापान सरकार की भेंट हैं ।

हम जब रोप-वे से पहुंचे तो यह अद्भुत लगा, ऊपर से यह पहाड़ डरावने लग रहे थे । चारों तरफ पहाड़ दिखाई दे रहे थे । शांति स्तूप के चारों ओर भगवान बुद्ध की सोने की पालिशयुक्त प्रतिमाएं हैं । अन्दर की प्रतिमाएं भव्य-विशाल

मन्दिर के रूप में स्थापित हैं । मन्दिर में जापानी भिक्षु नगाड़े बजाते रहते हैं । जपानी, सिंघली भिक्षु विपुल मात्रा में एक मठ में यहां रहते हैं । मन्दिर में घी के दीपक जल रहे थे, प्रतिमाएं स्वर्णिम थीं ।

इस पहाड़ी के नीचे के एक भाग में श्री उत्तराध्ययन सूत्र में बताया कि मंडीकुक्षी चैत्य था, जहां अनाथीमुनि व सम्राट श्रेणिक की भेंट हुई थी । यह बात हमें कवि जी ने बताई थी । हम कुछ जल्दी में थे, हमारी यात्रा बहुत लम्बी थी । फिर अभी राजगिर के बाकी पहाड़ों का वन्दन करना शेष था, यहीं पहाड़ों पर अनेकों मुनियों ने तप द्वारा मोक्ष प्राप्त किया था ।

उदयगिरि :

इस पर्वत की ७८२ सीढ़ियां हैं । यहां सांवलिया भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा है । यहां यही एक मात्र मन्दिर है, पर यहां बहुत से यात्री वन्दना करने को आते हैं। मूलनायक की प्रतिमा नीचे तलहटी में गांव के मन्दिर में विराजमान है । पहाड़ तो पहाड़ है यह यात्रा थकाने वाली थी । यह पहाड़ अपनी इतिहासिक महानता लिये हुए है ।

स्वर्णगिरि :

इसे जनभाषा में सोनगिर कहते हैं । इस पहाड़ का यात्रा की दृष्टि से बहुत गहरा महत्त्व है । इस पर्वत पर चढ़ने के लिये १०६४ सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं । इतनी सीढ़ियां चढ़ने के बाद २ मन्दिरों का परिसर आता है । जहां हमें प्रथम तीर्थंकर परमात्मा ऋषभदेव व अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के चरणों को वन्दन करने का अवसर मिला ।

राजगिरि को अलविदा :

तीन पर्वतों की चढ़ाई में हमारे पांव जवाब दे चुके थे, फिर शाम हो चुकी थी। बिहार का इलाका था । हम उसी दिन पावापुरी से रवाना होने का मन बनाया । गुरुदेव उपाध्याय श्री अमरमुनि जी म० के दर्शन किये । आगामी यात्रा के लिये आशीर्वाद लिया, मंगल पाठ सुना । फिर वीरायतन और पांचों पहाड़ों को प्रणाम किया। यह भूमि प्रभु महावीर की भूमि है, यहां कोई जीवन भर भी रहता रहे, कभी उकता नहीं सकता । पर जीवन का नाम ही यात्रा है, सो गुरुदेव की आज्ञा लेकर प्रस्थान किया ।

वीरायतन से तांगा लिया । बस स्टैंड पर बस का ठीक समय नहीं था, अब दो विकल्प बचे थे । एक तो हम राजगिर के मन्दिरों में रहते, दूसरा टैक्सी लेकर पावापुरी पहुंचे । हमने पुनः दोनों मन्दिरों में तीर्थंकर प्रभु को प्रणाम किया । कुछ खरीदने योग्य वस्तुएं खरीदीं । वहां की मिट्टी को मस्तक पर लगाया, वैशाली, पटना, राजगिरी के पत्थरों को इकट्ठा कर लिया, यही हमारी यात्रा की निशानियां थीं, कुछ पुस्तकें, चित्र व मूर्तियां खरीदीं, कुछ ऑडियो कैसेट भी खरीदे, उन दिनों वीडियो का रिवाज नहीं था, ऑडियो का रिवाज था । यह सब सरलता से आती थी । हमने टैक्सी से आगे की यात्रा जारी रखने का निश्चय किया ।

नालंदा में :

वहां से टैक्सी में बैठकर हम नालंदा पहुंचे । नालंदा की भारतीय साहित्य में अपनी पहचान है । इसकी प्रसिद्धि नालंदा विश्वविद्यालय के खण्डहरों के कारण है । इस विश्वविद्यालय के खण्डहर काफी इलाके में बिखरे पड़े हैं । कई प्रतिमाएं तो जैन तीर्थंकरों की लगती है, क्योंकि वह

दिगम्वर हैं । हमें एक स्थान दिखाया गया जहां अकलंक व निष्कलंक नाम के दिगम्वर जैन मुनियों को वौद्धों ने गिरा दिया था । इस घटना के फलस्वरूप अकलंक मुनि मारा गया । दूसरे निष्कलंक मुनि वच गये। इसे मारने का कारण इन मुनियों द्वारा वौद्ध भेष धारण कर, वौद्ध साहित्य का ज्ञान अर्जित करना था । यह भव्य विश्वविद्यालय था । जहां १०,००० से ज्यादा विद्यार्थी संसार के कोने कोने से ज्ञान अर्जित करने आते थे । यहां उनके होस्टलों (कमरों) के खण्डहर थे, यहां रसोई घर थे। एक भव्य पुस्तकालय था, जिसे वहलोल लोधी ने जला दिया था, वहलोल लोधी ने वहुत से भिक्षुओं को मार दिया, प्रतिमाएं तोड़ डालीं, अभी तो चार कि.मी. में विश्वविद्यालय के खण्डहर दिखाई देते हैं पर अभी यहां खुदाई होनी वाकी है, यह खुदाई अंग्रेजों ने की थी, यह कार्य आगे नहीं वढ़ा ।

यह वौद्ध साहित्य के अध्ययन के लिये पालीशोध संस्थान भारत सरकार द्वारा स्थापित है । इस स्थान से प्राप्त महात्मा वुद्ध की प्रतिमाएं सुरक्षित की रखी गई हैं, इसके प्रांगण में कुछ जैन प्रतिमाएं भी हैं । पर यह प्रतिमाएं कहां से मिली हैं, इसका उल्लेख नहीं । वौद्ध ग्रन्थों का विशाल भंडार है । ताड़पत्र व हस्तलिखित ग्रन्थों का अच्छा संग्रह है । देश-विदेश से जिज्ञासु यहां ज्ञान अर्जित करने आते हैं । देश-विदेश के यात्री नालंदा विश्वविद्यालय की यात्रा पर भारतीय प्राचीन संस्कृति से अवगत होते हैं । विद्यालय के वाहर एक विशाल वौद्ध प्रतिमा स्थापित है । जिसे स्थानीय लोग पूजते हैं । इस विशाल विद्यालय को देखने के लिये पर्याप्त समय की आवश्यकता है । यह कुछ घण्टों का काम नहीं, पर जव समयाभाव हो, और यात्रा कई दिन की हो तो रास्ते में रुकना मुश्किल होता है ।

हमें नालंदा की यात्रा सम्पन्न की और आगे बढ़े ।

गौतम स्वामी की जन्मभूमि गोबरग्राम कुण्डलपुर

नालंदा भगवान महावीर व भगवान पार्श्वनाथ के शिष्यों की मिलना स्थली रहा है । यहां चर्तुयाम व पांच महाव्रतों के उपासकों की एक चर्चा हुई थी । नालंदा में शाम हो गई थी । कुछ ही दूरी पर भगवान महावीर के तीन गणधरों की इन्द्रभूति वायुभूति, अग्निभूति की जन्मभूमि थीं । यह तीनों सगे भाई थे । वेदों के प्रकाण्ड पण्डित थे । उनका गोत्र गौतम था, सैकड़ों शिष्य इनसे विद्या अर्जित करते थे । एक मुहल्ले में हमारी गाड़ी रुकी । पीले रंग की एक भव्य इमारत थी । पता चला इसी साल सारी इमारत का जीर्णद्वार हो रहा था ।

यहां के पण्डितों ने बताया कि इस गांव के ब्राह्मण गणधर गौतम के वंशज हैं। गणधर गौतम प्रभु महावीर से आठ वर्ष बड़े थे । वह चार ज्ञान के धारक थे । वह चौदह हजार शिष्यों में प्रमुख थे । जैन समाज में भगवान महावीर के बाद गणधर गौतम को मांगलिक माना जाता है । हर जैन कहता है :-

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतम गणी
मंगलं स्थूल भद्रदाद्यो श्री जैन धर्मस्तु मंगलं
इसी तरह जैन दिगम्बर परम्परा में कहा जाता है
मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतम गुरु
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, श्री जैन धर्मस्तु मंगलं
श्वेताम्बर परम्परा में और कहा जाता है
अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भण्डार
श्री गुरु गौतम सिमरिये मन वांछे फल दातार ।

गणधर गौतम जैन परम्परा में पूज्नीय है । उन जैसा ज्ञानवान विनयी संसार में ढूंढने से नहीं मिलता । इतने बड़े

पद पर पहुंचकर अहंकार उन्हें छू नहीं पाया था । उन्होंने मामूली सी भूल होने पर, वह श्रावक आनन्द से प्रायश्चित करने उनके घर गये । उनकी प्रेरणा से वच्चे से वूढ़े तक भिक्षु वनकर केवल ज्ञान प्राप्त किया, मोक्ष पाया । पर गणधर गौतम को महावीर के प्रति असीम मोह के कारण केवलज्ञान नहीं हो रहा था । एक वार भगवतीसूत्र में प्रभु महावीर ने गणधर गौतम के सराग प्रेम की प्रशंसा करते हुए कहा कि "हम और तुम अनेकों जन्मों तक रहते चले आ रहे हैं, हमारा स्नेह जन्म जन्म का है । तुम घवराओ मत, हम दोनों मोक्ष प्राप्त करेंगे । तुम धर्म कार्य में प्रमाद मत करो ।"

प्रभु महावीर के कई वार समझाने पर भी गणधर गौतम का प्रभु महावीर के प्रति स्नेह वढ़ता गया । आखिर प्रभु महावीर का निर्वाण समय करीव आया । तो उन्होंने अपने प्रिय शिष्य गौतम को प्रतिवोध देने हेतू दूसरे गांव भेजा । पीछे प्रभु महावीर का निर्वाण हो गया । यही निर्वाण दिवस गण्धर गौतम के केवलज्ञान का दिवस वना, यह दीवाली का दिन था । ऐसा शिष्य विश्व के मानचित्र पर कहां मिलता है जो अपने गुरु के प्रति समर्पित होकर धन्य हो गया । प्रभु महावीर इस नगर में अनेकों वार पधारे, ऐसी मान्यता है । यहां मूल नायक भगवान ऋषभदेव का मन्दिर है ।

कुण्डलपुर :

दिगम्वर जैन परम्परा इसी स्थान को प्रभु महावीर की जन्मभूमि मानती है । कई विद्वान गोवर व कुण्डलपुर को एक ही मानते हैं । कई लोगों की मान्यता है कि प्रभु महावीर ने इस ग्राम की परिक्रमा की थी । परिक्रमा के समय अनेक

कुण्ड पाए गए । इस कारण इस तीर्थ का नाम कुण्डलपुर रखा गया ।

जैसा मैंने वैशाली के संदर्भ में लिखा था कि प्रभु महावीर के तीन जन्म स्थान माने जाते हैं, प्रथम वैशाली के करीव कुण्डलपुर, दूसरा यह स्थान नालन्दा के पास है, तीसरा लक्ष्छुवाड़ है जिसे श्वेताम्बर परम्परा मानती है ।

संवत १६६४ में यह छोटे-छोटे जैन मन्दिर थे, परन्तु अव तो मात्र दो मन्दिर बचे हैं, एक पुराना मन्दिर, दूसरा नया मन्दिर । नया मन्दिर आनन्द जी कल्याणजी पेढ़ी ने वनाया है । यह शास्त्रीय विधि से पीले पत्थरों से वना है । यह मन्दिर कला का श्रेष्ठतम नमूना है । इस नये मन्दिर में भगवान ऋषभदेव की २००० वर्ष पुरानी प्रतिमा स्थापित की गई है । इस प्रतिमा के माथे पर भगवान ऋषभदेव के की माता मरुदेवी विराजित है । इसके साथ प्रभु की जटा प्रदर्शित की गई है । जैन तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के कंधे पर जटा प्रदर्शित की जाती है । यह प्रतिमा भारत में एकमात्र प्रतिमा है । यह प्रतिमा भव्य, सरस एवं चमत्कारी है । यहां पहुंचने वाला हर यात्री इस प्रतिमा को देखकर धन्य हो जाता है । इस मन्दिर में भगवान ऋषभदेव, श्री शांतिनाथ जी, श्री पार्श्वनाथ, श्री अजीतनाथ प्रभु की भव्य प्रतिमाएं विराजित हैं । यह प्रतिमाएं मन्दिर की शान को चार चांद लगा रही हैं । इन प्रतिमा की भव्यता व दिव्यता से यात्री मंत्रमुग्ध हो जाते हैं ।

पुराना मन्दिर :

यह गणधर गौतम स्वामी का घर माना जाता है । यहां अनेक प्राचीन चरण स्थापित हैं । यह चरण गुरु गौतम के २००० वर्ष पुराने माने जाते हैं । इस पुराने मन्दिर में

दादागुरु के चरणों के दर्शन भी होते हैं । इसके इलावा यहां ११ गणधरों के चरण प्रतिविम्वित हैं । यह गणधर गौतम का जन्म स्थान है । इस तीर्थ की यात्रा भाग्यशाली ही कर पाते हैं । यहां गुरु गौतम स्वामी की विशेष अनुकम्पा है जो इस तीर्थ की यात्रा सच्चे मन से करता है । वह यहां से कोई खाली नहीं जाता। उसकी समस्त मनोकामनाएं ऋषभदेव की कृपा से पूरी होती हैं । हमने दोनों स्थानों के दर्शन कुछ तीव्रता से किये क्योंकि यहां आरती का समय ७ वजे का था, उसी हिसाव से पहुंचे, आरती हो रही थी । इस तीर्थ का वातावरण इस जगह को चार चांद लगाता है । अभी तक हम जहां जहां भी पहुंचे वह सभी तीर्थक्षेत्र थे । वैशाली, राजगृह नालन्दा, गोवरग्राम सभी सिद्ध भूमियां हैं । इनमें सवसे ज्यादा भव्य जीव तो राजगृह से मोक्ष पधारे, राजगृही मुनि सुव्रत भगवान की जन्मभूमि है । दिगम्वर परम्परा अंतिम केवली जम्वुस्वामी की निर्वाणभूमि मथुरा मानती है । श्वेताम्वर परम्परा उनका स्थान राजगिरि ही मानती है । आचार्य जम्वू स्वामी अंतिम केवली थे जिनकी कृपा से समस्त आगम हमें उपलव्ध होते हैं । वह श्रेष्ठी परिवार के कुलदीपक थे । भर यौवन में वैराग्य जागृत हुआ । परिवार वालों ने शर्त रखी, तुम्हारी शादी आठ कन्याओं से होगी । अगर तुम उनको जीत सको तो हम तुम्हें साधु वनने की आज्ञा दे देंगे । आचार्य जम्वू स्वामी ने माता पिता की आज्ञा से रम्भा के समान, आठ कन्याओं से शादी करवाई । हर पत्नी आठ करोड़ का दहेज लेकर आई । रात्रि को आठों पत्नीयों के साथ उनकी धर्मचर्चा होने लगी । वाहर चोर प्रभव ५०० साथियों के साथ चोरी कर रहा था, उसने सारे दहेज की गठड़ियां वांध लीं, जव चलने लगे तो जमीन पर पांव जम गये, समझ में कुछ न आया । भीतर देखा कि श्री

जम्बू स्वामी आठ पत्नीयों से दीक्षा की आज्ञा मांग रहे थे । प्रभव चोर ने स्वयं को धिक्कारा । सुबह हुई प्रभव चोर व उसके ५०० साथी जम्बू कुमार की आठ पत्नीयों से दीक्षा के लिये गणधर सुधर्मा के पास पहुंचे । ऐसे कुलरत्न राजगृही ने पैदा किये । सूत्रकृतांग सूत्र में नालन्दा को राजगृही का मुहल्ला बताया गया है जिससे सिद्ध होता है कि प्राचीन राजगृही विस्तृत क्षेत्र में फैली थी, जिसमें गोवरग्राम, कुण्डलपुर आदि क्षेत्र पड़ते थे ।

कुण्डलपुर में हमने प्रभु दर्शन किया । पूजा अर्चना में भाग लिया । फिर अपनी गाड़ी में सवार हो गये । अव हम ऐसी भूमि पर पहुंचने वाले थे, जिसका सीधा सम्बन्ध प्रभु महावीर से था । इसकी भव्यता, इतिहास, कला हमारे दिमाग में घूम रहा था । असल में यात्रा और पर्यटन में जमीन आसमान का अन्तर है । यात्रा में श्रद्धा ही प्रधान रहती है । पर्यटन में हर वस्तु भौतिक सुख की दृष्टि से होती है। मेरे विचार से धर्मतीर्थ कभी पर्यटन स्थल नहीं वन सकते, न ही उन्हें वनना चाहिये, नहीं तो तीर्थ अश्रद्धा का केन्द्र हो जायेगा । आध्यात्मिकता समाप्त हो जायेगी । तीर्थो को मान्यता समाप्त हो जायेगी ।

पावा सिद्ध क्षेत्र में :

जैन इतिहास में पावापुरी महत्वपूर्ण स्थान है । शास्त्रों का कथन है कि प्रभु महावीर की प्रथम व अंतिम देशना यहां हुई थी । प्रभु महावीर को केवलज्ञान तो ऋजुवालिका नदी के किनारे शालवृक्ष के नीचे शाम किसान के खेत में हुआ । तव प्रभु महावीर को तपस्या करते साढे बारह वर्ष से अधिक समय वीत चुका था । प्रभु महावीर गो दुहीका के आसन में विराजमान थे । तभी उनकी आत्मा को कर्मवंधन से मुक्त

करने वाला, परमात्म अवस्था प्रदान करने वाला, केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । प्रभु सर्वज्ञ व सर्वदर्शी व अर्हत व जिन बन गये । जैन मान्यता है कि तीर्थंकर अपनी प्रथम सभा में तीर्थ सभी तीर्थ की स्थापना करते हैं, जिसमें देव व मनुष्य शामिल होते हैं । इस उपदेश में सभी देव उपस्थित हुए हैं । परन्तु यह अचम्भा था कि प्रभु महावीर का प्रथम उपदेश बेकार गया । किसी ने भी साधु धर्म या गृहस्थ धर्म के व्रत को अंगीकार न किया । प्रभु महावीर ने यहां से विहार किया । ६६ दिन तक मौन रहे । श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार उन्होंने धर्मरूपी तीर्थ की स्थापना पावापुरी नगर में की, परन्तु दिगम्बर परम्परा यहां से कुछ दूरी पर राजगृह को ही तीर्थ स्थापना का स्थान मानते है । जैन मान्यता के अनुसार तीर्थंकर नामकरण के उदय से तीर्थंकर साधु साध्वी, श्राविक व श्राविका रूपी तीर्थ की स्थापना करते हैं। तीर्थंकर आठ प्रतिहार्य युक्त होते हैं । इनके उपदेश स्थान को समोसरण कहते हैं, जिसका निर्माण देवता करते हैं । स्वर्ग के ६४ इन्द्र अपने देव परिवारजनों सहित, प्रभु की सेवा में उपस्थित रहते हैं । प्रभु के ३४ अतिशय होते हैं । ३५ वाणी के अतिशय होते हैं । तीर्थंकरों की माता गर्भ में १४ या १६ स्वप्न देखती है । तीर्थंकर गर्भ में भी तीन ज्ञान के धारक होते हैं । इन अतिशयों के कारण तीर्थंकर प्रभु त्रिलोक पूज्य होते हैं । तीर्थंकर परमात्मा अशोकवृक्ष के नीचे विराजे हैं । उनके सिर पर तीन छत्र झूलते हैं । वह रत्नजड़ित सिंहासन पर विराजते हैं । उनके सिर के पीछे आभामंडल रहता है । दो चामरधारी उन्हें चामर ढुलाते हैं । धर्मचक्र हर समय साथ रहता है । पुष्पवर्षा हर समय होती रहती है, स्वर्ग के देव दुंदुभियां बजाते हैं । समोसरण के आकार का विस्तृत वर्णन जैन आगमों से मिलता है ।

इसी प्रकार के समोसरण से सुसज्जित प्रभु महावीर पावापुरी में पधारे । इस नगरी को मध्य पावा भी कहते हैं । इसके इलावा दो पावा और थी एक थी मल्लों की पावा, दूसरी भंगी देश की पावा । यह पावा इन दोनों के बीच पड़ती हैं । श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों परम्परा प्रभु महावीर का निर्वाण स्थान मानती हैं । यहां ही प्रभु महावीर ने अपनी प्रथम देशना दी थी ।

गौतम इन्द्रभूमि व अन्य गणधरों की धर्म चर्चा :

श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार जिस समय श्रमण भगवान महावीर इस नगरी में पधारे तो आसमान देव विमानों से भर गया । उस समय वहां एक सोमिल नाम का ब्राह्मण रहता था, उसने एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें उस समय के प्रसिद्ध ११ ब्राह्मण अपने हजारों शिष्य सहित यज्ञ कर रहे थे । यह यज्ञ महीनों से चल रहा था, इसमें देवों का आहवान किया था, पशु बलि दी जाती । इस यज्ञ को सम्पूर्ण करने की जिम्मेदारी प्रसिद्ध विद्वान गौतम इन्द्रभूति के कन्धों पर थी । इन्द्रभूति वेद, वेदांग, ज्योतिष, इतिहास, कोष, व्याकरण व पुराण का प्रसिद्ध विद्वान थे ।

भगवान महावीर का समोसरण लगा । देव, मनुष्य व पशु-पक्षी प्रभु महावीर की वाणी सुनने आने लगे । सारी धरती पर मंगल छा गया । देवताओं के विमान यज्ञ भूमि की ओर बढ़ रहे थे । इन्द्रभूति को यह दृश्य देखकर बहुत प्रसन्नता हुई। उसने अपने साथियों से कहा, "देखो ! मेरे यज्ञ के प्रभाव से खींचे देव धरती पर आने को मजबूर हो रहे हैं ।"

पर यह बात हो ही रही थी कि देवविमान यज्ञ वेदी से ऊपर से होकर आगे चले गये । इन्द्रभुति परेशान हो गया । इन्द्रभुति को हैरानी थी कि देवता यज्ञभूमि छोड़ आगे कहां जा रहे हैं, पता करना चाहिये, गौतम स्वामी ने पता किया तो उन्हें पता चला कि एक क्षत्रिय महावीर की धर्म सभा में जा रहे हैं, देव ऐसा क्यों कर रहे हैं ? यह तो वेद का सरासर अपमान है । ऐसा कौन इन्द्रजालीया है जो देवों को अपने जाल में फंसा रहा है ?" इन्द्रभूति को देवताओं का यज्ञ मंडप से जाना ब्राह्मण व वेद का अपमान लगा। उसने कहा कि "मैं अभी जाकर उस इन्द्रजालिये के दम्भ को समाप्त करता हूं । इस घोषणा के बाद वह अपने शिष्य परिवार के साथ प्रभु महावीर के समोसरण की ओर बढ़े ।

प्रभु महावीर का आकर्षण अद्भुत था । इन्द्रभूति ने सोचा कि मैं अभी जाकर उस व्यक्ति के पाखंड का भांडा चौराहे में तोड़ूंगा । लोगों को गुमराह करने वाले प्रचार से सावधान करूंगा । पर अगर मैं ऐसा न कर सका तो घर वापस नहीं आऊंगा । उनका शिष्य बनकर जीवन गुजारूंगा ।

अहं से भरे गौतम के कदम समोसरण की ओर बढ़ रहे थे । वह जब यज्ञभूमि से चला था तो अपने अहंकार में डूबा था । पर ज्यों-ज्यों समोसरण के नजदीक आता गया समोसरण के प्रभाव से उसका क्रोध शांत हो गया । तीर्थंकर प्रभु के अतिशय ने उसे प्रभावित किया, वह प्रभु महावीर के सामने आया । प्रभु महावीर ने कहा, "गौतम ! आ गये !"

अपना नाम सुनकर उसका अहंकार और दृढ़ हो गया । उसने सोचा "यह इन्द्रजालिया तो मेरा नाम भी जानता है, यह तो इसके लिये सहज है आज के युग में कोई भी मेरे नाम से अपरिचित नहीं । अगर यह भी जानता है

तो कौन सी बड़ी बात है ?"

कुछ पल के बाद प्रभु महावीर ने कहा, "इन्द्रभूति ! तुम्हारे मन में आत्मा के बारे में संशय है ।" प्रभु महावीर की वाणी सुनकर इन्द्रभूति परेशान हो गया, क्योंकि अपनी कमजोरी को वह अकेला ही जानता था । उसने कभी नहीं सोचा था कि कोई मेरे मन की बात को भरी महफिल में रख देगा ।

प्रभु महावीर ने कहा, "इन्द्रभूति ! वेदों के अध्ययन करते समय तुम्हारे मन में यह संशय उत्पन्न हुआ । पर तूने इसका कभी निराकरण करने की चेष्टा नहीं की ।" फिर प्रभु महावीर ने गौतम की समस्त संशय का निराकरण किया । अपनी प्रतिज्ञा अनुसार इन्द्रभूति प्रभु महावीर का प्रथम शिष्य बन गया । इन्द्रभूति के शिष्य बनते ही ब्राह्मण समाज गढ़ ही ढह गया । वेद आधारित यज्ञ संस्कृति का स्तम्भ गिर गया । यज्ञशाला में भूचाल सा आ गया । प्रभु महावीर के प्रथम उपदेश में इन्द्रभूति के इलावा पावा में सम्मिलित प्रमुख विद्वानों ने बारी-बारी अपनी शंका का निवारण किया । यहां चन्दनबाला ने भी दीक्षा ग्रहण की । यह वहीं इन्द्रभूति गौतम थे जो चौदह हजार साधुसंघ के प्रमुख थे, आर्यचन्दना छत्तीस हजार साध्वियों की प्रमुख थी । युद्ध में उनके पिता मारे गये थे । माता ने शील की रखा के लिये आत्म हत्या कर ली । पहले वैश्या ने खरीदा, फिर श्रेष्ठी धन्ना पुत्री बनाकर घर रखा, उसकी दीक्षा भी समोसरण में हुई थी ।

गौतम स्वामी व उनके साथियों को ९ गणों में बांटा गया । अकेले गौतम स्वामी व सुधर्मा ही प्रभु महावीर के पश्चात जीवित रहे । गणधर गौतम महान आत्मा थे । वह सूर्य की किरण पकड़कर अष्टापद तीर्थ पर चढ़े । वहां १५०० तापस भूखे प्यासे जीवन कठोर तपस्या कर रहे हैं ।

यह अष्टापद हिमालय का कैलाश क्षेत्र है। गौतम स्वामी ने १५०० तापसों को प्रतिबोध कर दीक्षित किया । प्रभु महावीर के दर्शनों से पहले इन्हें खीर से पारणा करवाया, जब वह लोग भगवान महावीर के पास दर्शन को आ रहे थे तो इन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया गणधर गौतम ज्ञान से खाली रहे । एक बालक अतिमुक्त की ऊंगली पकड़कर उसे मोक्ष का मार्ग दिखा दिया ।

इसी प्रकार चन्दना बाला के साथ उसकी मौसी साध्वी मृगावती ने संयम ग्रहण कर केवलज्ञान प्राप्त किया । वह प्रभु महावीर की प्रचारक शिष्या थी । गणधर गौतम ने लाखों लोगों के जीवन को बदल डाला । पावा का वर्णन आते ही गणधर गौतम व चन्दनबाला का वर्णन आना सहज है । हम उसी पुण्य भूमि की ओर आगे बढ़ रहे थे ।

पावापुरी दर्शन :

नालन्दा में काफी समय लग गया । रात्रि के आठ बज रहे थे । हम जलमंदिर की आरती देखना चाहते थे । गाड़ी सड़क पर आगे बढ़ रही थी । कुछ समय के पश्चात् पावापुरी तीर्थंकर महावीर इन्टर कालेज का बोर्ड दिखाई दिया । तीर्थक्षेत्र को वन्दन किया । विहार में हम जहां भी गये, अधिक पहाड़ी क्षेत्र थे, मात्र यही मैदानी क्षेत्र था । यहां हर अरहर की फसल खूब होती है । इस क्षेत्र का वर्णन प्रसिद्ध ग्रन्थ विविध तीर्थकल्प में, आचार्य जिनप्रभव सूरि ने विस्तृत ढंग से किया है। यह विवरण ८०० वर्ष पुराना है । राजगिर से ३१ कि.मी. की दूरी पर है । यह क्षेत्र २५०० वर्ष पुराना है । भगवान महावीर चम्पा होते यहां पधारे थे । यहां का राजा हस्तिपाल था । उस समय यह राजा की कुंभी थी, प्रभु महावीर यहां पधारे ।

जहां प्रभु महावीर ने अंतिम उपदेश दिया था, वहां एक चरण स्थापित है जो भगवान के बड़े भ्राता नन्दीवर्धन ने स्थापित किए थे । जलमंदिर के सामने एक चबूतरा है, उस स्थान पर प्रभु महावीर का अग्नि संस्कार हुआ था, तव दीपावली का दिन था । उस दिन नवमल्ल, नव लिच्छवी आदि गणतन्त्रों के राजा भगवान की धर्मदेशना सुनने को आये थे । भगवान महावीर अंतिम उपदेश उत्तराध्ययन सूत्र के रूप में दिया । इसका वर्णन कल्पसूत्र में विस्तृत रूप में मिलता है । यह ग्रन्थ दो हजार वर्ष पुराना है । यहां महावीर के रूप में जलमंदिर विश्व प्रसिद्ध है । सारा मंदिर एक तालाव के मध्य स्थित है । इस तालाव में लाल कमल खिले रहते हैं । इस मन्दिर का निर्माण भगवान के वड़े भ्राता राजा नन्दीवर्धन ने किया था । यहां प्रभु महावीर के चरण के साथ-साथ सुधर्मा स्वामी व गौतम स्वामी के चरण भी स्थापित हैं । इसका मंदिर का जीर्णद्वार होता रहा हैं । यह मन्दिर समुद्र के मध्य द्वीप की तरह सुशोभित है । यहां ११ गणधर, १६ सतियां तथा ४ दादाओं के चरण भी स्थापित हैं । इस मन्दिर पर कोई शिलालेख नहीं । यहां दो श्वेताम्वर मन्दिर हैं । पुराना समोसरण मन्दिर भव्य है । यहां प्रथम समोसरण हुआ था । प्रभु महावीर की भव्य प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य तीर्थंकर भगवान भी विराजमान हैं । जलमंदिर एक विशाल पुल से जुड़ा है । यहां महताव वीबी का मन्दिर है, जहां चरण हैं । दीवाली को यहां विशल मेला लगता है । जलमंदिर में लड्डू चढ़ाया जाता है ।

नया समोसरण मन्दिर :

कहा जाता है प्रभु महावीर ने अपना अंतिम उपदेश यहां दिया था । यह एक स्तूप है जो प्राचीन है । उसके पास